4·50

NATIONAL CAMPAIGN COMMITTEE

for Central Legislation on Construction Labour

Justice V.R. Krishna Iyer
Chairman

R. Venkataramani
Advocate - Supreme Court
Convenor

S. Bhatnagar
Coordinator

Correspondence Address
E 23 Xavier Apartments
Opposite 'D' Block, Saraswati Vihar
Pitampura, Delhi - 110 034

निर्माण मज़दूरों के लिये क्या चाहिये?

लेखिका -सुश्री निर्मला सुन्दरम्

पिछले कई सालों से सरकार मजदूरों को संगठित व असंगठित क्षेत्र में बांटने का प्रयास कर रही है । जब कभी संगठित क्षेत्र का मजदूर, मजदूरी में बढ़ोतरी व सामाजिक सुरक्षा या श्रम कल्याण में बढ़ोतरी की मांग उठाता है तो सरकार असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की दयनीय स्थिति की दुहाई देकर उनकी मांगों को असामाजिक करार देने का प्रयत्न करती है । परन्तु सरकार की रुचि असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को राहत देने की नहीं है । इस क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा एवम् श्रम कल्याण देने की बात को सरकार असम्भव कह कर टाल देती है । इसीलिये आज, संगठित क्षेत्र के मजदूर आन्दोलन, अपने आपको मजदूरों की पार्टी घोषित करने वालों तथा सामाजिक व आर्थिक न्याय की हामी समस्त राजनीतिक पार्टियों की यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वे असंगठित क्षेत्र को ठीक से समझें ~~[असंगठित क्षेत्र के हालात इतने अधिक असमान्य हैं कि उन्हें संगठित क्षेत्र के सहयोग व अपने से चाहसी]~~

असंगठित क्षेत्र क्या है ?

असंगठित क्षेत्र का अर्थ उत्पादन का वह क्षेत्र नहीं है जिसके मजदूर ट्रेड यूनियन के रूप में असंगठित है । असंगठित क्षेत्र का अर्थ है "उत्पादन का असंगठित स्वरूप" । [उत्पादन में असंगठित और संगठित क्षेत्र का अन्तर कृषि और उद्योग के अन्तर से भी कहीं अधिक व्यापक है उदाहरण के लिये] उत्पादन के संगठित स्वरूप के उदाहरण के लिये हम आजकल की एक बड़ी कपड़ा मिल जैसे डी·सी·एम· को ले सकते हैं । इस कम्पनी में कपास की खरीद के बाद कपास की सफाई, धागा बनाना, कपड़ा बुनना, कपड़े की छपाई व अन्य प्रोसेसिंग से लेकर कपड़े की थोक बिकरी तथा कुछ जगहों पर खुदरा बिक्री तक सभी कुछ एक ही मैनेजमेंट द्वारा [illegible] सालों तक नियमित मजदूरों द्वारा एक ही स्थान से नियंत्रित करके करवाया जाता है । उत्पादन के असंगठित स्वरूप

के लिए हम बड़ी इमारतों के निर्माण का उदाहरण ले सकते हैं । (जैसे दिल्ली की लोदी एस्टेट में बनी 'स्कोप' बिल्डिंग) जैसे 1982 में एशियाड खेलों के पूर्व बने दिल्ली के विभिन्न पुल तथा स्टेडियम ।

इनमें से अधिकांश निर्माण कार्यों की मलकियत सरकार या सरकारी निकायों की है । इन निर्माण कार्यों का ठेका बड़ी सरकारी निर्माण कारपोरेशनों तथा बड़ी निर्माण कम्पनियों को दिया गया । परन्तु इन निर्माण कार्यों पर काम करने वाले मजदूरों में सरकार और विभिन्न ठेके लेने वाली इकाइयों के रेग्युलर इम्प्लाईज की संख्या बहुत सीमित थी । इन निर्माण कार्यों का अधिकांश काम उन मजदूरों द्वारा किया गया जिन्हें असंख्या उपठेकेदारों की लम्बी श्रृंखला द्वारा प्रतिदिन की मजदूरी देकर काम पर लिया गया । उपठेकेदारों की इस लम्बी श्रृंखला में नीव की खुदाई का काम एक ठेकेदार को दिया गया तो उसकी भराई का काम दूसरे ठेकेदार को, शटरिंग लगाने का काम एक ठेकेदार को दिया गया तो लोहे का काम दूसरे को और कन्क्रीट का काम तीसरे को । इसी तरह प्लम्बिंग, बिजली कारपेंट्री, फर्श इत्यादि का काम अलग-अलग उपठेकेदारों द्वारा किया गया । इन उपठेकेदारों के पास भी इन कार्यों को करने हेतु मजदूर इनके employees के रूप में नहीं थे । इन उपठेकेदारों ने अनगिनत लेबर ठेकेदारों द्वारा मजदूर प्राप्त किये । लेबर ठेकेदारों ने भी अनगिनत "जमादारों" द्वारा ही देश के विभिन्न हिस्सों से मजदूर व कारीगर प्राप्त किये । देश के दूर दराज हिस्सों से ये मजदूर व कारीगर इन जमादारों द्वारा अडवान्स देकर या लम्बे चौड़े वायदों पर दिल्ली लाये गये । देश के विभिन्न हिस्सों से आये इन लाखों निर्माण मजदूरों व कारीगरों ने लगातार सालों तक सरकार व सरकारी निकायों की मलकियत से बन रहे पुलों और स्टेडियमों पर विभिन्न प्रकार के काम किये परन्तु ठेकेदार-उपठेकेदार-लेबर ठेकेदार-जमादार के मार्फत काम करने की व्यवस्था के कारण इन निर्माण कार्यों में मालिक-मजदूर रिश्ते का

स्वरूप हमेशा अस्थाई और बदलता रहा क्योंकि उपठेकेदारी की इस लम्बी श्रृंखला की कड़ियां बार-बार टूटती-जुड़ती रहीं । निर्माण कार्य की विभिन्न stages पर इन मजदूरों और कारीगरों की टोलियां एक ही मालिक का काम करते हुए भी एक निर्माण कार्य से दूसरे निर्माण कार्य के बीच बदलती रहीं । इस प्रकार इन लाखों मजदूरों ने एक ही मालिक के लिये एक ही शहर के विभिन्न हिस्सों में लगातार सालों काम किया परन्तु उनके काम में मालिक-मजदूर रिश्ता कुछ दिनों/हफ्तों/महीनों के टुकड़ों में ही बंटा रहा । ये मजदूर और कारीगर अगर लगातार एक जमादार के साथ काम करते रहे तो वो जमादार अनगिनत लेबर ठेकेदारों के पास उनसे काम करवाता रहा । ये मजदूर कारीगर और जमादार अगर एक लेबर ठेकेदार के साथ काम करते रहे तो वह लेबर ठेकेदार अनगिनत उपठेकेदारों से लिये ठेकों पर उनसे काम करवाता रहा । इसी तरह से ये उपठेकेदार विभिन्न ठेकेदारों से एक ही कार्य के विभिन्न हिस्से उपठेकेदारी में लेते रहे । इस प्रकार की उत्पादन व्यवस्था में एक ही मलकियत में बन रहे बड़े पुल या स्टेडियम के निर्माण में विद्यमान अनगिनत मालिक-मजदूर की श्रृंखलाओं के कारण और इन श्रृंखलाओं के बार-बार टूटने और जुड़ने के कारण निर्माण उद्योग में मुख्य मालिक और मजदूर का रिश्ता निरंतर अस्थाई और बदलता रहता है । निर्माण उद्योग के इस स्वरूप को, जिसमें एक पूरी इमारत का निर्माण अनगिनत छोटे-छोटे और अपने आप में पूर्ण निर्माण कार्यों में बंटा होता है और जहां इन अनगिनत छोटे-छोटे निर्माण कार्यों के बीच कोई निश्चित सम्बन्ध होते हुए भी नहीं होता, हम उत्पादन का असंगठित स्वरूप मानते हैं ।

इधर यह बात जोड़ देना आवश्यक है कि समस्त असंगठित क्षेत्र का एक स्वरूप जैसा कोई उत्पादन स्वरूप नहीं है । इस क्षेत्र के विभिन्न घटकों के स्वरूप को अलग-अलग समझकर ही यह स्पष्ट हो सकता है कि किस प्रकार से ये संगठित क्षेत्र के स्वरूप से अलग है । असंगठित क्षेत्र के विभिन्न घटकों के स्वरूप को समझकर यह भी समझा जा सकता है कि किस प्रकार के कानून इस

क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा व श्रम-कल्याण प्रदान कर सकती है ।

असंगठित क्षेत्र के मजदूरों हेतु सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण

भारत में असंगठित क्षेत्र के कुछेक घटकों के उत्पादन स्वरूप के अनुकूल सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण देने वाले कानून के मिसाल हैं । गोदी मजदूरों हेतु 1948 में बनाया गया Dock workers (Regulation of Employment) Act, 1948 एक ऐसा कानून है जो बंदरगाहों के कार्य-स्वरूप को ध्यान में रख कर बनाया गया है और जो बंदरगाह मजदूरों को वास्तव में कारगर रूप से सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण प्रदान करता है । इसके अतिरिक्त "महाराष्ट्र मथाडी, हमाल व मेन्युएल वर्क्स (रोजगार नियमन व welfare)" अधिनियम 1969, भी पिछले 20 सालों से महाराष्ट्र की मण्डियों में काम करने वाले श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण प्रदान करता आ रहा है । गुजरात, आन्ध्र-प्रदेश एवम् तमिलनाडू में भी मण्डियों के श्रमिकों हेतु कानून बनाये गये हैं परन्तु निहित स्वार्थों के विरोध एवम् इन राज्य-सरकारों की निष्क्रियता के कारण ये कानून बेकार (ineffective) पड़े हुए हैं ।

निहित स्वार्थों के विरोध और सरकार की निष्क्रियता को चुनौती देने के लिये अधिकांश असंगठित क्षेत्र में ट्रेड यूनियन आन्दोलन भी नहीं हैं ।

उपरोक्त गिनती के कुछेक कानूनों के अलावा, असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा वश्रम कल्याण प्रदान करने हेतु अन्य सभी कानून पूर्णतया कागजी कार्यवाही रह गये हैं क्योंकि उनको बनाते हुए असंगठित क्षेत्र की उत्पादन स्वरूप को बिल्कुल भी ध्यान में नहीं रखा गया है । संगठित क्षेत्र के स्वरूप को ध्यान में रख कर बनाये गये सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण के कानूनों को मात्र असंगठित क्षेत्र तक बढ़ा देना काफी नहीं क्योंकि इन दोनों प्रकार के उद्योगों का स्वरूप पूरी तरह से अलग है । असंगठित क्षेत्र के विभिन्न

घटकों के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण मात्र वह कानून दे सकता है जो एक विशेष घटक के उत्पादन स्वरूप की समझ के आधार पर बनाया गया है ।

§ऐसे ही कानून की मांग निर्माण मजदूरों हेतु पिछले कुछ सालों में देश भर से उठी§

निर्माण मजदूरों हेतु ऐसे ही कानून की मांग पिछले सालों से उठी है । इसके लिये पहल तमिलनाडु राज्य निर्माण मजदूर संगम द्वारा की गई है । 1985 में इस यूनियन द्वारा दिल्ली में आयोजित निर्माण मजदूरों की सेमिनार में एक राष्ट्रीय अभियान समिति का गठन सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री वी॰आर॰ कृष्ण अयेर की अध्यक्षता में किया गया जो निर्माण मजदूरों के लिये एक केन्द्रीय कानून की मांग कर रही है । इस समिति में विभिन्न निर्माण मजदूरों की ट्रेड यूनियनों के साथ-साथ कुछ संगठित क्षेत्र के मजदूरों की ट्रेड यूनियनें, कानून जानने वाले, श्रम मंत्रालय सम्बन्धित विभागों के भूतपूर्व अधिकारी एवम् असंगठित मजदूरों की अमानवीय स्थिति से सहानुभूति रखने वाले लोग एवम् संगठन भी हिस्सा ले रहे हैं । लगभग समस्त ट्रेड यूनियन के केन्द्रीय संगठन भी इस राष्ट्रीय अभियान समिति में, बिना किसी राजनीतिक भेद-भाव के सहयोग कर रहे हैं ।

इस राष्ट्रीय अभियान समिति ने 1986 में निर्माण मजदूरों हेतु एक कानून "construction workers (Regulation of Employment and Conditions of Service) Bill, 1986, का पूर्ण प्रारूप तैयार कर दिसम्बर 1986 में लोकसभा की याचिका समिति को लाखों निर्माण मजदूरों के हस्ताक्षर सहित एक याचिका के रूप में दिया । साथ ही 1985 में श्रम मंत्रालय द्वारा नियुक्त एक त्रिपक्षी कार्यकारिणी समिति (Tripentile working group on Building and construction Industry)

में भी समस्त मजदूर संगठनों के प्रतिनिधियों ने राष्ट्रीय अभियान समिति द्वारा बनाये गये इस कानून के प्रारूप को अपनाने की बात रखी है ।

निर्माण मजदूरों के इस राष्ट्रीय अभियान समिति की कोशिशों के बावजूदर, दिसम्बर 1988 में सरकार ने राज्य-सभा में एक ऐसे कानून को प्रस्तावित किया है जो कि पूर्णतया खोखला है और उन कानूनों की श्रृंखला में आता है जो किसी भी रूप में लागू नहीं किये जा सके ।

The Building and other construction workers (Regulation of Employment and conditions of service) Bill 1988 के खोखलेपन को समझने हेतु, निर्माण उद्योग के स्वरूप व निर्माण मजदूरों की समस्याओं को अच्छी तरह से समझना अनिवार्य है ।

निर्माण उद्योग का ढांचा एवम् स्वरूप

निर्माण उद्योग का स्वरूप समझने से पहले हम संक्षेप में निर्माण उद्योग के महत्व व आकार को समझ लें -

1981 की (Census) जनगणना के अनुसार निर्माण उद्योग में मात्र 37·20 लाख निर्माण मजदूर काम करते हैं जिनमें से लगभग 18·19 लाख मजदूर ग्रामीण क्षेत्र में और 17·01 लाख मजदूर शहरी क्षेत्रों में काम करते है । 1987 की Pocket Book of Labour Statistics के अनुसार 1984 में 11·20 लाख निर्माण श्रमिक सार्वजनिक क्षेत्र में और 66 हजार निर्माण श्रमिक निजी क्षेत्र में काम करते हैं । भारतीय अर्थ व्यवस्था की थोड़ी भी जानकारी रखने वाला व्यक्ति तुरन्त यह समझ सकता है कि ये आंकड़े वास्तविकता से बहुत दूर हैं । पंचवर्षीय योजनाओं के नियोजित विकास के युग के साथ भारत में निर्माण कार्यों का तेजी से विकास हुआ है । आज़ादी के बाद के 30 सालों में ब्रिटिश हुकुमत के 150 सालों में लगी कुल पूंजी से अधिक पूंजी निर्माण कार्यों में लगाई गई है । 1951-85 के दौरान 170239 करोड़ रुपये निर्माण कार्यों में लगाये गये हैं जो कुल विकास विनियोग का 43·20 प्रतिशत है । सातवीं पंच-वर्षीय योजना में कुल नियोजित विनियोग का 52% हिस्सा निर्माण कार्यों

में लगना है जो 93600 करोड़ रुपये हैं । इसी काल में निजी क्षेत्र में 72800 करोड़ रुपये निर्माण कार्यों में लगेंगे । इतने बड़े उद्योग में 1981 में भी मात्र 37.20 लाख निर्माण श्रमिकों की संख्या वास्तविकता का पांचवां हिस्सा भी नहीं । निर्माण में नियोजित कुल विनियोग तथा निर्माण में लगे प्रति एक लाख रुपये से जनित कुशल व अकुशल श्रमिकों की आवश्यकता के आधार पर अनुमान है कि भारत में दो करोड़ से अधिक निर्माण मजदूर काम करते हैं । यह संख्या समस्त संगठित क्षेत्रों के मजदूरों की आधी संख्या से भी अधिक है और संगठित क्षेत्र के किसी भी घटक से ज्यादा है ।

निर्माण उद्योग असंगठित क्षेत्र में, कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा घटक है । निर्माण उद्योग के अन्तर्गत कई प्रकार के निर्माण कार्य आते हैं जैसे बांध व नहरें, पुल व बंदरगाह, दफ्तर, होटल, अस्पताल व रिहायशी मकान, सड़कें इत्यादि । ये निर्माण कार्य देश के हर हिस्से में चलते रहते हैं । इस विशाल आकार के बावजूद निर्माण कार्य का स्वरूप असंगठित ही है तथा निर्माण कार्य में इस्तेमाल होने वाली बहुत-सी सामग्री जैसे ईंटें, चूना पत्थर इत्यादि का उत्पादन भी असंगठित क्षेत्र में होता है ।

पिछले 3 दशकों में सारे देश में हो रहे निर्माण कार्यों में भारी परिवर्तन आया है । जहां एक समय निर्माण कार्य छोटे-छोटे शहरों तक सीमित था और ठेकेदारों द्वारा व्यक्तिगत रूप से कराया जाता था वहां अब यह पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत होने वाले विशाल कार्यों में बदल गया है जिसमें बड़े बांधों आदि से लेकर, भारी संख्या में रहने के मकानों तक बहुत कुछ सम्मिलित हैं । अब बहुत से शहरों में शहरी विकास प्राधिकरण द्वारा किया जाने वाला निर्माण कार्य एक नियोजित कार्य हो गया है । इस काल में निर्माण का ठेका लेने वाली बहुत सी सार्वजनिक कारपोरेशनों और बड़ी निजी कम्पनियों का उदय हुआ है एवम् सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं की भूमिका निर्माण उद्योग में अत्यधिक व निर्णायक हो गई है । अतः यह कहा जा सकता है कि निर्माण

उद्योग अब एक सुनियोजित उद्योग के स्तर पर पहुंच गया है । इस नियोजित विकास के बावजूद निर्माण उद्योग में व्याप्त ठेकेदारी व उपठेकेदारी की प्रथा तथा मालिक-मजदूर रिश्ता, आदि सम्बन्धों से आगे नहीं बढ़ पाया है जिसके कारण मजदूरों की स्थिति अमानवीय रह गई है ।

मजदूरी की दर में कमी और असमानता के अलावा निर्माण मजदूरों की कई समस्याएं हैं जैसे साल भर में पूरे दिन काम नहीं मिलना, काम करने पर भी पूरी मजदूरी मिलने का ठिकाना नहीं होना, जोखिम भरी काम की परिस्थिति होने पर भी चोट लगने पर इलाज या मुआवजा नहीं मिलना, काम के दौरान हुई दुर्घटना में मर जाने पर भी निर्धारित मुआवजा नहीं मिलना, सालों साल काम करने पर भी बीमारी की सवैतनिक छुट्टी या इलाज की व्यवस्था न होना, साल दर साल औरों के लिए घर इत्यादि बनाते रहने पर भी बुढ़ापे में अपने लिये घर तो क्या, खाने के खर्च के लिये पेंशन का आसरा न होना इत्यादि । निर्माण मजदूर विद्यालयों की इमारतें बनाते हैं पर उनके अपने बच्चे अनपढ़ रह जाते हैं, निर्माण मजदूर ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं और मकान बनाते हैं पर उन्हें खुद दयनीय स्थिति में रहते हैं, वे अस्पताल और डिसपेंसरी की इमारतें बनाते हैं पर उन्हें खुद कोई इलाज की व्यवस्था उपलब्ध नहीं, वे खाद्य उत्पादन के विकास के लिये बांध और नहरें बनाते हैं जबकि उन्हें एक दिन की रोटी कमाने के लिये भी भारी संघर्ष करना पड़ता है ।

ऐसी अमानवीय परिस्थितियां आज भी इस उद्योग में क्यों विद्यमान हैं को समझने हेतु हम निर्माण उद्योग की स्वरूप के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर अपनी नजर डालें ।

<u>निर्माण उद्योग के स्वरूप</u> का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है । इसमें मालिक-मजदूरों के सम्बन्धों का अस्थाई एवम् बदलता स्वरूप है । निर्माण का अधिकांश कार्य ठेकेदार/उपठेकेदार की बहुत सी कड़ियों में बंटा होता है । एक छोटे से मकान

के निर्माण कार्य में भी चिनाई करने, फर्श व छत डालने, घिसाई, पत्थर लगाने, टाइल लगाने, सैनिटरी का काम, बिजली, पुताई व पेंट, लकड़ी व लोहे का काम इत्यादी जैसे कई पैटी-ठेकों में बंटा होता है । व्यक्तिगत रिहाईश के लिये बनने वाले मकानों का हिस्सा कुछ निर्माण कार्य का बहुत छोटा हिस्सा ही है । निर्माण कार्य का प्रमुख हिस्सा सरकारी क्षेत्र में बनने वाले बड़े-बड़े निर्माण प्रोजेक्टों तथा सार्वजनिक धन से निजी क्षेत्र में बनने वाले बड़े निर्माण कार्यों का है । इन बड़े निर्माण कार्यों में ठेकेदार-उपठेकेदारों की श्रृंखला और भी अधिक लम्बी होती है । ठेकेदार-उप-ठेकेदारों की यह लम्बी श्रृंखला निर्माण कार्य में मालिक-मजदूर के रिश्ते को अधिकाधिक अस्थाई और बदलता स्वरूप प्रदान करती है ।

ठेकेदार-उपठेकेदारों की यह लम्बी श्रृंखला ही निर्माण कार्य में मालिक-मजदूरों के एक दूसरे से ओझिल रहने वाले इसके दूसरे महत्वपूर्ण पक्ष का कारण है । निर्माण कार्य का ठेका लेने वाली सभी बड़ी कम्पनियों और बड़े ठेकेदार तथा सार्वजनिक कारपोरेशन भी स्थाई मजदूरों के रूप में निर्माण मजदूरों की कम से कम संख्या रखने का प्रयत्न करती है । इस तरह के उत्पादन स्वरूप में उपठेकेदारों की लम्बी श्रृंखला के अंतिम छोर का ही मजदूरों से रोजगार करवाने वाले (employer) के रूप में सीधा सम्पर्क होता है । अधिकांश मामलों में उप-ठेकेदारों की लम्बी श्रृंखला का यह अन्तिम छोर किसी भी एक कार्य का मिस्त्री होता है जो वास्तव में खुद भी मजदूरी कमाने वाला होता है न कि रोजगार देने वाला मालिक ।

निर्माण उद्योग का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष है तेजी से बड़ी-बड़ी ठेकेदार कम्पनियों व बड़े-बड़े ठेकेदारों तथा सार्वजनिक क्षेत्र में बड़ी-बड़ी ठेकेदारी लेने वाली निर्माण कारपोरेशनों का उदय - क्योंकि अधिकांश ठेकेदारी लेने वाली ये कम्पनियां प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों के रूप में रजिस्टर्ड हैं इसलिए निर्माण-कम्पनियों के बढ़ते हुए आकार के वास्तविक आंकड़े आसानी से उपलब्ध नहीं हैं ।

निर्माण उद्योग का चौथा महत्वपूर्ण पक्ष है गला-काट प्रतियोगिता के बावजूद बड़ी निर्माण कम्पनियों व ठेकेदारों का आपस में संगठित होना । बिल्डर्स एसोसियेशन आफ इण्डिया के इस वर्ष हुए सम्मेलन के अनुसार इसके 30,000 से अधिक सदस्य हैं और ये पूरे देश में 68 केंद्रों से काम करती है ।

निर्माण उद्योग का पांचवां महत्वपूर्ण पक्ष है सार्वजनिक निर्माण कार्यों तथा सार्वजनिक धन द्वारा होने वाली निजी क्षेत्र के निर्माण कार्यों, दोनों में सार्वजनिक धन की निर्णायक भूमिका । आज निर्माण उद्योग उस मंजिल पर पहुंच गया जहां इसमें इसमें होने वाले उतार-चढ़ाव मुख्य रूप से इसमें लगने वाले सार्वजनिक धन की मात्रा पर ही निर्भर करते हैं ।

निर्माण उद्योग का छटा और सबसे अधिक चिंताजनक पक्ष है कमिशन तथा मुख्य कार्य, दोनों में ही काले धन का आधिपत्य । निर्माण कार्य में ठेके की लेन-देन, निर्माण सामग्री की खरीद व पेमेंट के भुगतान आदि हर स्तर पर अनगिनत कमीशनों की भरमार इतनी अधिक हो गई है कि आज कमीशन को रिश्वत तो समझा ही नहीं जाता ।

निर्माण उद्योग का सातवां पक्ष है पिछले दशकों में निर्माण कार्य के टेंडरों के औसत में भारी बढ़ोतरी । जहां पहले एक निर्माण कार्य कई छोटे-छोटे टेण्डरों में बंटा होता था वहां अब निर्माण कार्य के टेण्डर अधिकाधिक बड़े होते जा रहे हैं और 'टर्न की प्रोजैक्ट' की भांति विशाल टेण्डर ही उत्तम समझे जाते हैं । इसका नतीजा यह है कि छोटे ठेकेदारों के लिये सीधे काम लेना असम्भव होता जा रहा है और उपठेकेदारी की श्रृंखला में बढ़ोतरी हो रही है ।

निर्माण उद्योग में निजी निर्माण के लिये सार्वजनिक धन की उपलब्धि में बढ़ोतरी के फलस्वरूप इसका आठवां पक्ष है कुछ क्षेत्रों में निर्माण कार्यों का केन्द्रीयकरण । आज दिल्ली बम्बई जैसे शहरों के आस पास हो रहे निर्माण कार्यों की मात्रा भारत में कई प्रान्तों में हो रहे सारे निर्माण कार्यों से तुलना की जा सकती है ।

निर्माण कार्य के उपरोक्त स्वरूप का नतीजा

निर्माण कार्य में कई गुना विकास हो जाने के बाद भी आज निर्माण मजदूरों के लिये महीने में तीसों दिन रोजी कमा पाना असम्भव है । निर्माण मजदूरों को आज काम करने के बावजूद मजदूरी मिलने की कोई गारन्टी नहीं क्योंकि उपठेकेदारी लम्बी श्रृंखला में से यदि एक भी कड़ी टूटी तो सारा दोष उस पर मढ कर सबसे पहले मजदूरी ही काट दी जाती । निर्माण मजदूरों के लिये साप्ताहिक छुट्टी, बिमारी की छुट्टी या सवैतनिक अर्नड (earned leave) छुट्टी जैसा कुछ भी नहीं । सालों एक ही जगह काम करने वाला मजदूर यदि एक भी दिन अनुपस्थित होता है तो उसे उस दिन की मजदूरी से हाथ धोना पड़ता है, और अगले दिन काम न मिलने का आतंक भी सहना पड़ता है चाहे उसकी यह अनुपस्थिति काम पर ही लगने वाली चोट के कारण करनी पड़े । आज निर्माण काम के दौरान सुरक्षा के प्रबन्धों के अभाव में चोट लग जाने या मर जाने पर किसी निर्माण मजदूर को वर्कमेन कम्पेनसेशन कानून 1927 के तहत मुआवजा मिलना भी कल्पना की बात रह जाती है । अधिकांश रूप से दुर्घटना के बाद निर्माण मजदूर को काम से भी हाथ धोना पड़ता है और दुर्घटना में मर जाने के बाद तो निर्माण मजदूर के लिये सामाजिक सुरक्षा और श्रम कल्याण का अर्थ रोज काम मिलना, दुर्घटना के कारण होने वाली अनुपस्थिति में रोटी भर खाने का खर्च मिलना, काम करने पर मजदूरी मिलने की गारन्टी होने तक ही सीमित रह गये हैं । आज निर्माण मजदूरों के लिये अनुपस्थिति में दवा व इलाज का खर्च, दुर्घटना के कारण अपंग हो जाने या मर जाने पर समुचित मुआवजा, मिलना, बुढ़ापे में भीख मांगने को मोहताज होने से सुरक्षा आदि तो कल्पना या स्वप्न में भी उनके पास नहीं फटकते । इस तरह की सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण की बात तो मात्र उन सचेत यूनियनों तक सीमित है जो आज निर्माण मजदूरों की राष्ट्रीय अभियान समिति के साथ केन्द्र सरकार से एक समुचित कानून की मांग कर रही

है । आज निर्माण मजदूरों के काम की स्थिति सदियों पुरानी गुलामी व्यवस्था की सी ही है हांलांकि वर्तमान सभ्य समाज के विभिन्न कानूनों की लम्बी श्रृंखला निर्माण कार्यों में भी काम की परिस्थिति का संचालन करती है ।

1. Workmen's compensation Act 1923
2. Indian Trade Unions Act 1926.
3. Payment of wages Act 1936.
4. Employment of children Act 1938.
5. Industrial Disputes Act 1947.
6. Shops & Commercial Establishment Act.
7. Industrial Employment (Standing order) Act 1946.
8. Factories Act 1948.
9. Minimum wages Act 1948.
10. Employees state Insurance Act 1948.
11. Employees Provident Fund Act 1951.
12. Employment Exchanges (Compulsory notification of vacancies) Act 1959.
13. Apprentices Act 1961.
14. Maternity Benefit Act 1961.
15. Motor Transport Workers Act 1965.
16. Payment of Bonus Act 1965.
17. Contract labour (Regulation and Abolution) Act 1970.
18. Payment of gratuity Act 1972.
19. Equal Remmeneration Act 1976.
20. Inter State Migrant Workmen (Regulation of Employment & conditions of service) Act 1979.
21. The child labour (Prohibition & Regulation) Act 1986.

परन्तु इनमें से किसी भी कानून का पालन निर्माण उद्योग में नहीं होता ।

निर्माण उद्योग में उपरोक्त समस्त कानूनों में से एक भी कानून का पालन न होने का कारण एक ओर निर्माण मजदूरों की अज्ञानता और उनमें संगठन का अभाव भी है पर इसका वास्तविक कारण है इन कानूनों में निहित कमजोरियां । इन में से अधिकांश कानून संगठित क्षेत्र के लिये बनाये गये हैं । जहां मालिक मजदूर का एक स्थाई सम्बन्ध होता है और जहां मैनेजमेंट ओझिल न होकर एक स्पष्ट इकाई होता है । इन कानूनों का क्षेत्र (coverage) निर्माण उद्योग तक बढ़ाने से पूर्व निर्माण उद्योग के उपरोक्त स्वरूप की ओर कभी कोई ध्यान नहीं दिया गया । इसलिये चाहने पर भी निर्माण उद्योग में इनमें से किसी भी कानून का लागू किया जाना सम्भव ही नहीं ।

विशेष कानून की मांग

भारत की आजादी के बाद पिछले चार दशकों में कई बार निर्माण उद्योग के मजदूरों की काम की हालत पर चर्चा की गई पर उन चर्चाओं के आधार पर कभी भी कोई कानून बनाने का प्रयास नहीं किया गया । 1963 में तत्कालीन श्रम मंत्री डी० संजीवैया की अध्यक्षता में बिल्डिंग और निर्माण उद्योग की औद्योगिक समिति की दूसरी बैठक ने इस उद्योग के काम की हालत व इसके लिये उपयुक्त कानून (legislations) पर बातचीत की । 1966 में न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर की अध्यक्षता में गठित नेशनल लेबर कमीशन ने भी निर्माण उद्योग का अध्ययन किया और अपनी सिफारिशें 1969 में दी । 1972 में बिल्डिंग और निर्माण उद्योग समिति की तीसरी बैठक ने पुनः सात साल बाद एक comprehensive कानून का सुझाव रखा । 1985 में बिल्डिंग व निर्माण उद्योग में प्रोविडेंट फण्ड एक्ट, ई·एस·आई एक्ट, पेमेंट आफ ग्रेचुटी एक्ट इत्यादि के लागू करने में आने वाली कठिनाई की छानबीन करने और

इस उद्योग के मजदूरों के लिए उपयुक्त सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था बनाने के लिये एक त्रिपक्षीय समिति का गठन किया जिसकी रिपोर्ट निहित स्वार्थ की शरारत के कारण अब तक अधर में लटकी हुई है । 1987 में बिल्डिंग और निर्माण उद्योग की औद्योगिक समिति ने उपरोक्त त्रिपक्षीय समिति की रिपोर्ट के इंतजार में (pending) कोई ठोस सुझाव नहीं दिया । 1987 में राज्य सभा में दो साल पूर्व दिये गये एक प्राइवेट बिल के उत्तर में सरकार ने उपरोक्त त्रिपक्षीय ग्रुप की रिपोर्ट के आधार पर उपयुक्त कानून बनाने का आश्वासन देते हुए 1985 के प्राइवेट बिल को वापिस लेने की बात कही थी । परन्तु 5 दिसम्बर 88 को उपरोक्त त्रिपक्षीय ग्रुप की रिपोर्ट या प्रोसीडिंग को देखे बिना ही राज्य सभा में श्रम मंत्री ने The Building & other construction workers (Regulation of Employment of conditions of Service) Bill 1988 प्रस्तावित कर दिया । इस बिल में मात्र कुछ सुरक्षा के प्रावधान दिये गये हैं, रोजगार के नियमन व काम की हालत की बात तो सिर्फ इसके नाम तक ही सीमित है । यह विधेयक भी निर्माण उद्योग के उपरोक्त स्वरूप को बिना ध्यान में रखे बनाया गया है इसलिये इसकी नियति भी मात्र एक कागजी कानून भर रहने की है ।

अन्त में निर्माण उद्योग के उपरोक्त स्वरूप के संदर्भ में हम इस बात पर विचार करें कि किस प्रकार का कानून इस असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण प्रदान कर सकता है ।

निर्माण उद्योग के स्वरूप के पहले दो पक्षों को देखते हुए एक असरदार कानून की पहली जरूरत Pre requisite है सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण देने के लिये एक स्थाई व स्पष्ट कड़ाई का बनाना । सर्वोच्च न्यायालय ने निर्माण मजदूरों सम्बन्धित व ठेके के मजदूरों सम्बन्धित विभिन्न फैसलों में मुख्य मालिक (Principal employer) को ही जिम्मेदार ठहराया है । इस पर इन फैसलों को देते समय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष निर्माण उद्योग के इस

स्वरूप की स्पष्टता नहीं थी । सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण के लिये मुख्य मालिक की अन्तिम जिम्मेदारी मात्र तय कर देना काफी नहीं । निर्माण उद्योग के वर्तमान स्वरूप में मालिक-मजदूर का सम्बन्ध अस्थाई ही रहेगा और मालिक हमेशा मजदूर से ओझल रहेगा । इसलिये जरूरत है कि एक ऐसी इकाई की जो इन दो पक्षों की कमी की पूर्ति कर सके । इसलिये

द्वारा प्रस्तावित कानून में मालिक-ठेकेदार, मजदूर और सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा बने एक त्रिपक्षीय बोर्ड का सुझाव दिया गया है । यह त्रिपक्षीय बोर्डसमस्त ठेकेदारों और मजदूरों का पंजीकरण करेगा । समस्त मालिक अपने निर्माण कार्य की सूचना इस बोर्ड को देंगे । समस्त ठेकेदार अपने साथ काम करने वाले मजदूरों को इस बोर्ड के द्वारा काम पर लेंगे । समस्त मजदूर इस बोर्ड के द्वारा काम प्राप्त करेंगे । सरकार के प्रतिनिधि इस बोर्ड द्वारा सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण के कानूनों को लागू करने का नियमन करेंगे ।

निर्माण मजदूर-बोर्ड अपना administrative खर्च निर्माण कार्य पर उसकी कुल लागत का 1% less इकट्ठा करके चलायेगा । यह बोर्ड निर्माण मजदूरों को न्यूनतम काम की गारंटिड मजदूरी, सवेतन साप्ताहिक छुट्टी, सवेतन बीमारी की छुट्टी व बीमारी के खर्च के लिए दुर्घटना के मुआवजे के लिये ग्रुप इन्श्योरेंस जैसी स्कीमें, प्रोविडेंट फण्ड व पेंशन की स्कीम इत्यादि आर्थिक संचालन निर्माण मालिक व ठेकेदार से कुल मजदूरी का एक हिस्सा लेकर उसमें से करेगा । इस प्रकार से नि॰म॰ कारी सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण सामुहिक रूप से इस बोर्ड द्वारा दिया जायेगा ।

निर्माण मजदूर बोर्ड में अफसरशाही के दोषों से मुक्त रखने के लिये इसमें मजदूरों के प्रतिनिधियों तथा मालिक व ठेकेदारों के प्रतिनिधियों का रजिस्टर्ड मजदूरों मालिकों व ठेकेदारों द्वारा चुनाव का सुझाव दिया गया है ।

डाक लेबर बोर्ड तथा महाराष्ट्र में मथाडी लेबर बोर्ड भी सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण का संचालन इसी प्रकार के त्रिपक्षीय बोर्ड द्वारा करते हैं । मालिक-मजदूर के अस्थाई व बदलते सम्बन्धों की समस्या का समाधान इस बोर्ड के रूप में एक स्थाई इकाई द्वारा करते हैं । क्योंकि यह बोर्ड संगठित क्षेत्रों में मैनेजमेंट द्वारा किये जाने वाले कई कार्यों की जिम्मेदारी ले लेता इसलिये इस बोर्ड द्वारा मैनेजमेंट के कुछ कर्तव्यों जैसे रोजगार का नियमन' को जिम्मेदारी ले लेना भी स्वाभाविक है ।

कुल निर्माण कार्यों में सरकारी निर्माण कार्यों का हिस्सा 70% है तथा निजी निर्माण कार्यों में भी सार्वजनिक धन से मिलने वाले ऋणों (loans) की निर्णायक भूमिका है । इसलिये निर्माण उद्योग में व्याप्त अराजकता और मजदूरों की अमानवीय स्थिति को ठीक करने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से सरकार की ही है । संविधान में श्रम तीसरी सम्मिलित (concurrent list का) विषय है । परन्तु निर्माण कार्य में केन्द्र सरकार का हिस्सा देखते हुए निर्माण मजदूरों के लिये समुचित कानून बनाने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर न छोड़ कर केन्द्र सरकार को पूरी करनी चाहिये । परन्तु सामाजिक और आर्थिक न्याय में विश्वास रखने वाली राज्य सरकारों के राज्य स्तरीय कानून बनाने की पहल करके केन्द्र सरकार द्वारा कानून बनाने की मांग अवश्य करनी चाहिये ।

निर्माण प्रोजेक्टों के बढ़ते हुए आकार, निर्माण का ठेका लेने वाली कंपनियों व ठेकेदारों के बढ़ते हुए साइज तथा निर्माण कार्यों के केन्द्रीयकरण से यह स्पष्ट होता है कि निर्माण-उद्योग अब विकास के उस स्तर पर पहुंच चुका है जहां इसका आसानी से नियमन करना सम्भव है । यह कहना कि अभी तक निर्माण उद्योग अविकसित है और इसके विकास के साथ खुद ही निर्माण मजदूरों की दशा सुधर जायेगी तथ्यात्मक रूप से गलत है । सरकारी कानून के बिना निर्माण उद्योग क्या किसी भी उद्योग में सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण के अन्तर्गत कुछ भी नहीं दिया जा सकता ।

निर्माण उद्योग का ठेका लेने वाली कम्पनियों व ठेकेदारों के संगठन, बिल्डर्स एसोसिएशन ऑफ इण्डिया (बी॰ए॰आई॰) के विस्तार के साथ निर्माण मजदूरों के सामाजिक सुरक्षा श्रम कल्याण के अधिकार को नकारने की नीति मजबूत होती जा रही है । उपरी तौर पर तो बी॰ए॰आई॰ भी निर्माण उद्योग में लागू दो दर्जन कानूनों की जगह एक समुचित कानून की मांग का समर्थन करती है जो केवल निर्माण मजदूरों के लिये ही बनाया जाये । परन्तु ऐसे कानून द्वारा रोजगार के नियमन की मुश्किलों को गिनाकर वे नियमन की अनिवार्यता का नकारती है ।

इस संदर्भ में निर्माण मजदूरों के बारे में कई भ्रम फैलाये गये हैं जिनका जिक्र यहां पर करना आवश्यक है । सबसे पहला भ्रम निर्माण मजदूरों के बारे में तो यह है कि उनमें स्थाई रूप से निर्माण का काम करने वाले मजदूरों की संख्या बहुत कम है । क्योंकि एक स्थान पर निर्माण कार्य पूरा होने पर निर्माण मजदूरों को दूसरे निर्माण-स्थल पर जाना पड़ता है इसलिये एक साथ काम करने वाले निर्माण मजदूरों के समुह हर बार नया रूप लेते रहते हैं । निर्माण स्थलों के बार-बार बदलते रहने से यह भ्रम पैदा करना बहुत आसान हो जाता है कि निर्माण मजदूरों का बड़ा हिस्सा मूलत: खेतीहर मजदूरों का है जो खेती के में और अधिक धन कमाने के लिये शहरों व अन्य निर्माण स्थलों पर स्थाई रूप से काम करने आ जाते हैं । निर्माण उद्योग को समझने का प्रयत्न करने वाला व्यक्ति बड़ी आसानी से समझ सकता है कि दो करोड़ से अधिक का यह समुह उन कृषि मजदूरों का हर बार बदलता रहने वाला समुह नहीं हो सकता जो मात्र off season में या सूखा पड़ने वाले आपातकाल में निर्माण उद्योग में मजदूरी करने चले आते हैं । निर्माण मजदूरों का बड़ा dominant हिस्सा उन गांव के उन मजदूरों का है जो एक-दो दशक पहले खेती में काम करते थे पर जिनके लिये अब गांव में कोई काम उपलब्ध नहीं है और इसलिये जो अब स्थाई रूप से निर्माण मजदूर बन कर एक से दूसरे निर्माण स्थलों पर काम करते भटकते रहते हैं । कृषि में

सूखा या बाढ़ जैसे आपातकाल से ग्रस्त कृषि मजदूरों का एक हिस्सा भी निर्माण मजदूरों में मिलता रहता है पर यह स्थाई निर्माण मजदूरों का बहुत छोटा हिस्सा ही है । निर्माण उद्योग के सम्बन्ध में तीसरा भ्रम इसको मौसमी या अस्थाई उद्योग मानना है । अब जितने बड़े पैमाने में सार्वजनिक व निजी निर्माण कार्य हो रहा है और अब जितनी बड़ी सार्वजनिक व निजी कम्पनियां तथा बड़े-बड़े ठेकेदार निर्माणकार्य में लगे हैं उन्हें मौसमी या अस्थाई मानना भ्रम मात्र ही है ।

यह भ्रम मजदूरों को किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा या श्रम कल्याण देने के विरुद्ध उन निहित-स्वार्थियों ने जान बूझकर खड़ा किया है जिनकी सामाजिक व आर्थिक न्याय में कोई आस्था नहीं है । सरकारी अफसरशाही भी इस भ्रम का पोषण करती है और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिये समुचित कानून न बनाकर खोखले कानूनों द्वारा समाज को गुमराह करती है ।

रोजगार के नियमन को नकारना मात्र एक बचकाना तर्क है । क्योंकि निर्माण उद्योग में मालिक या मुख्य ठेकेदार रोजगार के नियमन को छिपा कर रखना चाहते हैं इसीलिये सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण देने वाले कानून को ही रोजगार का नियमन करने की भी जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी । रोजगार का नियमन किये बिना जब Workmen's compensation Act 1923, payment of wage Act 1936, Minimum wage Act 1948, Equal Remmeneration Act 1976, Inter State migrant workmen Act 1979 जैसे कानूनों को लागू कर पाना ही असम्भव है, तब बिना रोजगार नियमन के E.S.I. Act 1948, E.P.F. Act 1951, Maternity Benefits Act 1961, contrast Labour Act 1970, Payment of gratuity Act 1972 जैसे दीर्घकालीन सामाजिक सुरक्षा देने वाले कानून की तो बात ही करना व्यर्थ है । सरकारी अधिकारियों द्वारा बिना रोजगार के नियमन के सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण की बात

करना सिर्फ यह दर्शाता है कि वे तर्क-संगत बात न करके, निर्माण उद्योग में व्याप्त काले धन के नशे में बात कर रहे हैं ।

<u>अन्त /conclusion</u> :

असंगठित क्षेत्र के हालात इतने अधिक अमानवीय हैं कि उन्हें संगठित क्षेत्र के सहयोग व अपने से बाहरी सामाजिक-राजनीतिक सहयोग से ही संगठित किया जा सकता है । असंगठित क्षेत्र को संगठित करना, संगठित क्षेत्र के मजदूर आन्दोलन के लिये तथा समस्त राष्ट्र के लिये सामाजिक व राजनीतिक न्याय की व्यवस्था बनाने के लिये भी जरूरी है । आज जब संगठित क्षेत्र का मजदूर आन्दोलन, सामाजिक आन्दोलन न रहकर, अर्थवाद में फंस चुका है तब असंगठित क्षेत्र के मजदूर आन्दोलन को एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में संगठित करना ही सामाजिक व आर्थिक न्याय के आन्दोलन का स्पष्ट रास्ता नजर आता है ।

x ------ x

सुश्री निर्मला सुन्दरम्
ई-23, जेवियर अपार्टमेंट
डी ब्लाक के सामने
सरस्वती बिहार, पीतमपुरा
दिल्ली-34